दैनिक जागरण
समय मूल्यवान है, लेकिन सत्य समय से भी ज्यादा मूल्यवान है

एक बड़ा बदलाव

देश के पहले चीफ ऑफ डिफेंस यानी सीडीएस को हरी झंडी मिलना एक और बड़े बदलाव की आधारशिला ही नहीं, बल्कि एक जरूरी काम को उसके अंजाम तक पहुंचाना भी है। चूंकि सीडीएस का फैसला तीनों सेनाओं के हित में है इसलिए यह देशहित में एक बड़ा फैसला है। सीडीएस महज एक और पद का सृजन नहीं है। यह प्रतिरक्षा मोर्चे को और दुरुस्त करने का उपाय भी है। सैन्य मामलों के प्रमुख के रूप में सीडीएस की नियुक्ति कितनी अहम है, यह इससे समझा जा सकता है कि इस पद पर आसीन होने वाले केवल तीनों सेनाओं से संबंधित सभी मामलों के लिए रक्षा मंत्री के प्रमुख सैन्य सलाहकार के तौर पर ही काम नहीं करेंगे, बल्कि प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली न्यूक्लियर कमांड अथॉरिटी के सदस्य भी होंगे। इस सबके बाद भी सीडीएस की नियुक्ति से तीनों सेनाओं के प्रमुखों के अधिकारों में कहीं कोई कटौती होने नहीं जा रही है। वे पहले की तरह रक्षा मंत्री को रिपोर्ट करते रहेंगे। सीडीएस सरीखे किसी पद की आवश्यकता एक लंबे अर्से और खासकर कारगिल संघर्ष के बाद से ही महसूस की जा रही थी, लेकिन इस आवश्यकता की पूर्ति अब जाकर हो सकी। कारगिल संघर्ष के बाद यह पाया गया था कि तीनों सेनाओं के बीच समन्वय की कमी के चलते सेना को कहीं अधिक नुकसान उठाना पड़ा। कारगिल संघर्ष के अलावा अन्य अवसरों पर भी तीनों सेनाओं में तालमेल की कमी दिखाई दी।

एक ऐसे समय जब रक्षा मोर्चे पर चुनौतियां बढ़ती जा रही हों तब सेनाओं में तालमेल की कमी के लिए कहीं कोई गुंजाइश नहीं रहने देनी चाहिए। सीडीएस की जरूरत केवल इसलिए नहीं थी कि दुनिया के सभी प्रमुख देशों ने यह पद बना रखा है, बल्कि इसलिए भी थी कि तीनों सेनाओं की समस्याओं का समाधान तेजी से करने का काम ऐसे किसी सैन्य अफसर के जरिये ही हो सकता है। सैन्य मामलों में तकनीक की महत्ता जिस तरह बढ़ती जा रही है उसकी अनदेखी एक दिन भी नहीं की जा सकती। उम्मीद की जानी चाहिए सीडीएस की नियुक्ति से केवल सेनाओं के आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को ही गति नहीं मिलेगी, बल्कि उनकी रक्षा आवश्यकताएं भी समय से पूरी होंगी। निःसंदेह यह भी उम्मीद की जाती है कि सेनाओं के हितों की अनदेखी नहीं होगी और सेना के तीनों अंगों में जरूरी सुधार की प्रक्रिया तेज होगी। यह होनी भी चाहिए, क्योंकि आज के समय में सेनाओं का बड़ा होना उतना महत्वपूर्ण जितना कि उनका सक्षम होना। इस तरह की तमाम उम्मीदों के पूरा होने की संभावना के कारण ही सीडीएस के सृजन को एक संस्था के निर्माण के तौर पर देखा जा रहा है।

युवाओं की उम्मीद

केंद्र सरकार की हिमायत योजना बेरोजगारी से जूझ रहे जम्मू-कश्मीर के युवाओं के लिए एक उम्मीद की किरण है। योजना के तहत यहां के युवाओं को प्रशिक्षण देकर उन्हें राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय कंपनियों में रोजगार मिल रहा है। राज्य में बेरोजगारी की समस्या किसी से भी नहीं छुपी है। एक लाख युवाओं ने जहां रोजगार केंद्रों में अपने नाम दर्ज करवाएं हैं, वहीं छह लाख के करीब बेरोजगार युवा रोजगार के लिए सरकारी एवं निजी कंपनियों से उम्मीद लगाए बैठे हैं। पूर्ववर्ती सरकारों ने बेरोजगारी की समस्या के समाधान के लिए शेर-ए-कश्मीर रोजगार योजना, ओवरसीज कॉरपोरेशन जैसे कई कदम उठाए, मगर इनमें से कोई भी प्रयास सफल नहीं हो सका। युवाओं को इस काबिल नहीं बनाया गया कि वह प्रशिक्षण हासिल कर निजी क्षेत्र में भी अपना कौशल दिखा सकें। करीब सात वर्ष पूर्व जम्मू-कश्मीर में शुरू हुई केंद्र की हिमायत और उड़ान योजनाओं से युवाओं को रोजगार देने के लिए उठाए गए कदमों का सकारात्मक प्रभाव देखने को मिल रहा है। साठ हजार के करीब युवाओं को प्रशिक्षण देकर उन्हें बहुराष्ट्रीय कंपनियों में अच्छे पैकेज पर नौकरियां दिलाई गई हैं। यह अच्छी बात है कि युवा भी यह समझ रहे हैं कि सरकार के लिए हर किसी को सरकारी नौकरी देना संभव नहीं है। ऐसे में कौशल विकास की ट्रेनिंग लेकर युवा आत्मनिर्भर बन रहे हैं। वहीं युवाओं के लिए अच्छी बात यह भी है कि अब कई औद्योगिक घरानों ने भी जम्मू-कश्मीर में निवेश के लिए रूचि दिखाई है। उन्होंने राज्य प्रशासन से संपर्क भी किया है। अगर यह औद्योगिक घराने भी यहां पर आकर बड़े पैमाने पर निवेश करते हैं तो इससे भी हजारों युवाओं को रोजगार मिल सकता है। इसके लिए थोड़ी प्रतीक्षा करने की जरूरत है। इसी वर्ष पांच अगस्त को जम्मू-कश्मीर से अनुच्छेद 370 खत्म किया गया है और उसके बाद से ही अन्य राज्यों के लोगों के लिए जम्मू-कश्मीर में निवेश के रास्ते खुले हैं। ऐसे में यह उम्मीद की जा सकती है कि केंद्रीय योजनाओं के साथ-साथ निजी क्षेत्र को भी बढ़ावा मिलने से बेरोजगारी की समस्या पर जम्मू-कश्मीर में अंकुश लगाया जा सकता है।

अनुच्छेद 370 खत्म होने के बाद से ही अन्य राज्यों के लोगों के लिए जम्मू-कश्मीर में निवेश के रास्ते खुले हैं। केंद्रीय योजनाओं के साथ-साथ निजी क्षेत्र को भी बढ़ावा मिलने से बेरोजगारी की समस्या पर जम्मू-कश्मीर में अंकुश लगाया जा सकता है

आम आदमी की जेब काटने वाला साल

विवेक कौल

सरकार लोगों से विभिन्न मदों में वसूले 2,66,000 करोड़ रुपये बदहाल बैंकों पर खर्च नहीं करती तो इस पैसे से वह 26,600 किमी हाईवे बना सकती थी

अर्थशास्त्र में एक पुरानी कहावत है, 'देयर इज नो फ्री लंच।' इसका मतलब यही है कि किसी न किसी को तो बिल भरना ही पड़ता है। अब भारतीय रिजर्व बैंक की मौद्रिक नीति को ही ले लीजिए। वर्ष 2019 में रिजर्व बैंक ने रेपो दर में 135 आधार अंकों की कटौती की। साल के आरंभ में रेपो दर 6.5 प्रतिशत थी और साल के अंत में यह 5.15 प्रतिशत तक आ गई थी। रिजर्व बैंक जिस दर पर बैंकों को कर्ज देता है उस दर को रेपो दर कहते हैं। एक आधार अंक एक प्रतिशत का सौवां हिस्सा होता है। इस कटौती के पीछे क्या सोच थी? रिजर्व बैंक का मानना था कि जैसे-जैसे वह रेपो दर में कमी करेगा वैसे-वैसे बैंक जिस दर पर उधार देते हैं उस दर को घटाएंगे। जब बैंक उधार दर को घटाएंगे तो ज्यादा लोग उधार लेकर पैसा खर्च करेंगे। इससे आर्थिक सुस्ती थोड़ी बहुत-दूर होगी, पर ऐसा कुछ हुआ नहीं। दिसंबर 2018 में बैंकों की भारित औसत उधार दर 10.35 प्रतिशत थी। अक्टूबर 2019 में यह बढ़कर 10.40 प्रतिशत तक पहुंच गई थी। साफ है कि बैंकों की उधार दर घटने की जगह बढ़ गई। इससे यह पता चलता है कि रिजर्व बैंक की मौद्रिक नीति 2019 में पूरी तरह से विफल हो गई है।

अब प्रश्न यह उठता है कि ऐसा क्यों हुआ? एक नजर बैंकों की भारित औसत सावधि जमा दर (वेटेड एवरेज फिक्स्ड डिपॉजिट इंटरेस्ट रेट) पर डालें। दिसंबर 2018 में यह दर 6.87 प्रतिशत पर थी। अक्टूबर 2019 आते-आते यह दर केवल 12 आधार अंकों से गिरकर 6.75 प्रतिशत पर आ गई थी। 2019 में रिजर्व बैंक ने रेपो दर में 135 आधार अंकों की कटौती की थी, जबकि बैंकों की भारित औसत सावधि जमा दर में केवल 12 आधार अंकों की कमी आई। बैंकों ने इस गिरावट का भी फायदा उधारकर्ताओं को नहीं दिया। सवाल है कि ऐसा क्यों? पिछले कई वर्षों से भारतीय बैंक और विशेष रूप से सार्वजनिक क्षेत्र के बैंक खराब ऋण की समस्या से जूझ रहे हैं। इसलिए सावधि जमा दर गिरने का थोड़ा बहुत फायदा भी उधारकर्ताओं के पास नहीं पहुंचा। इससे बैंकों ने अपना मुनाफा बढ़ाया या फिर घाटे को कम किया, पर बैंकों की उधार दर नहीं घटने की केवल यही एक वजह नहीं है। निजी खपत का भारतीय अर्थव्यवस्था में करीब 60 प्रतिशत हिस्सा है। पिछले कुछ वर्षों में निजी खपत की बढ़त दो कारणों से हुई है। पहला, लोग अपनी आय का ज्यादा हिस्सा खर्च कर रहे हैं। दूसरा, लोग पहले से ज्यादा उधार लेकर पैसा खर्च कर रहे हैं। इसकी मुख्य वजह यह रही कि पिछले कुछ वर्षों में लोगों की आय में पहले की तरह बढ़ोतरी नहीं हुई है। आय इसलिए पहले की तरह नहीं बढ़ रही है, क्योंकि पर्याप्त नौकरियां नहीं पैदा हो रही हैं।

जब लोग उधार लेकर पैसा खर्च करते हैं और अपनी आय का ज्यादा हिस्सा खर्च करते हैं तो फिर बचत कम होती है। पिछले कुछ वर्षों में घरेलू वित्तीय बचत में गिरावट आई है। 2010-11 में घरेलू वित्तीय बचत सकल डिस्पोजेबल आय (ग्रॉस डिस्पोजेबल इनकम) के करीब 10 प्रतिशत से कुछ ज्यादा थी। वर्ष 2017-18 में यह गिरकर 6.5 प्रतिशत तक आ गई थी। इस माहौल में जब पूरे देश की घरेलू वित्तीय बचत कम हो गई है, बैंकों के लिए ब्याज दरों को घटाना काफी मुश्किल हो गया है। सवाल है कि इसका नुकसान किसको भुगतना पड़ रहा है? दरअसल खराब ऋण से न केवल बैंकों का नुकसान हो रहा है, बल्कि इससे ग्राहकों का भी नुकसान हो रहा है। यहां तक कि इससे पूरे देश का नुकसान हो रहा है। पिछले दो वित्तीय वर्षों में सरकार ने सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को डूबने से बचाने के लिए 1,96,000 करोड़ रुपये खर्च किए हैं। इस साल भी सरकार 70,000 करोड़ रुपये इन बैंकों को चालू रखने के लिए खर्च करेगी। आगे बढ़ने से पहले यहां यह समझना जरूरी है कि एक बैंक चलता कैसे है? लोग बैंक में अपनी बचत को जमा करते हैं। इस जमा पूंजी पर बैंक ब्याज देता है। इस पैसे को लेकर बैंक फिर उधार देता है। उधार पर ली गई ब्याज दर, जमा पूंजी पर दी गई ब्याज दर से ज्यादा होती है। इसके अलावा यह जरूरी होता है कि उधार लौटाया जाए। अगर उधार नहीं लौटाया जाएगा तो कोई भी बैंक लोगों की जमा पूंजी को नहीं लौटा पाएगा और बंद होने की कगार पर पहुंच जाएगा। ऐसी समस्या न पैदा हो इसके लिए सरकार हर साल सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों में पैसा निवेश करती है। इसलिए वर्ष 2017-18 से लेकर वर्ष 2019-20 तक सरकार इन बैंकों में करीब 2,66,000 करोड़ रुपये निवेश कर चुकी होगी। यह पैसा कहीं और भी लगाया जा सकता था।

अपनी नई किताब इन सर्विस ऑफ द रिपब्लिक में विजय केलकर और अजय शाह यह बताते हैं कि 10,000 किलोमीटर का चार लेन वाला हाईवे बनाने में करीब एक लाख करोड़ रुपये खर्च होता है तो अगर सरकार 2,66,000 करोड़ रुपये इन बैंकों पर खर्च नहीं करती तो इस पैसे से वह 26,600 किलोमीटर के हाईवे बना सकती थी। इसका यह मतलब कतई नहीं कि सरकार को सार्वजनिक क्षेत्र के बैंकों को बचाना नहीं चाहिए था, पर इस खर्चे की वजह से कई और महत्वपूर्ण खर्चे नहीं हो पाए।

अब इस कहानी को थोड़ा और आगे बढ़ाते हैं। वर्ष 2017-18 और वर्ष 2019-20 के बीच सरकार जो 2,66,000 करोड़ रुपये सार्वजनिक क्षेत्रों के बैंकों पर खर्च कर रही है, वह पैसा कहां से आ रहा है? वर्ष 2013-14 में डीजल और पेट्रोल पर लगे उत्पाद शुल्क से सरकार ने 46,386 करोड़ रुपये की कमाई की थी। वर्ष 2018-2019 आते-आते यह कमाई 2,13,400 करोड़ रुपये तक बढ़ गई थी। ऐसा कैसे हुआ? पेट्रोल और डीजल के प्रति लीटर पर एकत्र किए गए केंद्र सरकार के कुल उत्पाद शुल्क में तब और अब के बीच में काफी वृद्धि हुई है। अब कोई पूछ सकता है कि इसका भुगतान कौन करता है? जवाब साफ है-आप और हम, जब हर बार पेट्रोल और डीजल खरीदते हैं।

अगर अर्थशास्त्र का कोई एक सिद्धांत है जिसे सभी भारतीयों को समझना चाहिए तो वह यह कि किसी न किसी को तो बिल भरना ही पढ़ता है। अमूमन बिल भरने वाले लोग हम और आप ही होते हैं। अर्थशास्त्र का हमारी जिंदगी में अलग-अलग तरीकों से असर पड़ता है और हर साल असर पड़ता है। हां, अक्सर हम लोगों को पता नहीं होता कि हमारी जेबें काटकर कर बिल भरा जा रहा है। गुजरता साल 2019 भी एक ऐसा ही वर्ष था।

(स्तंभकार इजी मनी ट्राइलॉजी के लेखक एवं अर्थशास्त्री हैं)

response@jagran.com

अवधेश राजपूत

नैतिकता के संकट से घिरी राजनीति

गिरीश्वर मिश्र

विदा होता वर्ष बता गया कि राजनीतिक नेतृत्व में व्याप्त विकृति समाज और राजनीति के लिए कितनी घातक हो सकती है?

देश में छोटी-बड़ी अनेकानेक राजनीतिक पार्टियों और उनसे जुड़े और साथ ही स्वयंभू नेताओं की भीड़ देखकर यही लगता है कि भारत में राजनीतिक चेतना का तीव्र विकास हो रहा है। दूसरी ओर जब राजनीति के इन किरदारों की भूमिका और आचरण पर गौर करते हैं तो आम आदमी चिंतित हो उठता है। उसका मन इस बिरादरी के प्रति सशंकित होता जाता है। कई नेताओं के देश, समाज और विश्व के इतिहास और वर्तमान परिस्थिति से अपरिचय, सामान्य शिष्टाचार की कमी और किसी तरह के भरोसेमंद प्रामाणिक संचार कर पाने की मुश्किल उन्हें आए दिन उपहास का पात्र भी बनाती रहती है। टीवी और ऑनलाइन मीडिया के चलते पूरा देश इस तरह की घटनाओं का साक्षी होता है। चूंकि देश का नागरिक होना ही नेतृत्व करने के लिए पात्रता के लिए पर्याप्त है इसलिए उसके किरदार लोकतंत्र के प्रपंच के चलते (चुनाव लड़े बगैर भी) प्रदेश और देश के लिए फैसले लेने की स्थिति में भी पहुंच जाते हैं। राजनीति में सफलता पाने की अनेक युक्तियां हैं जो खास-खास मुहूर्त पर आजमाए जाते हैं। ये सारे पैंतरे सत्ता पाने और उसे बनाए रखने की हिकमत से जुड़े होते हैं। समाज के लिए चिंतन का समय ही नहीं बचता। शेष समय आलाप और प्रलाप को समर्पित हो जाता है। टीवी चैनल इतनी संख्या में हो चुके हैं कि नाना प्रकार के विमर्श राजनीतिक युद्ध के रूप में चलते ही रहते हैं।

आजकल राजनीतिक विमर्श के दौरान एक पक्ष के कथन और दूसरे पक्ष के अनर्गल कथन का अंतहीन सिलसिला ही भरा पड़ा होता है। बातचीत सतही वाचालता और अवांछित आक्रोश पर जोर देती है। आग्रही राजनेता रूढ़िबद्ध होकर किसी अन्य दृष्टि-विचार को देखना-सुनना ही नहीं चाहते। वे किसी भी तरह के परिवर्तन के प्रतिगामी ही रहते हैं और गति की जगह यथास्थिति को ही सुविधाजनक पाते हैं। नेताओं को यह भी अहसास नहीं होता कि उनके बेबुनियाद बयानों के क्या परिणाम होंगे? पिछले वर्षों में बड़े-बड़े नेता अपनी इस तरह की गैर जिम्मेदाराना हरकतों के लिए अदालतों में माफी मांग चुके हैं, लेकिन सब कुछ यथावत चालू है। पिछले दिनों तथ्यों की मनमानी और भड़काऊ व्याख्या पेशकर एक कल्पित आख्यान से देश में अस्थिरता लाने की कोशिश की गई। इसके चलते आगजनी, पथराव और हिंसा ने अनेक क्षेत्रों को अपने आगोश में ले लिया। अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर राजनीति किस तरह देश के लिए आत्महंता हो सकती है, इसका उदाहरण इस गुजरते वर्ष के आखिरी समय में सभी ने देखा। विदा होता वर्ष एक बार फिर से यह भी बता रहा कि राजनीतिक नेतृत्व में व्याप्त विकृति समाज और राजनीति के लिए कितनी घातक हो सकती है?

एक जमाना था जब नेता विश्वास का स्रोत होता था और उसकी बात का भरोसा रहता था। नेता होना भी आसान न था। उसे अर्जित किया जाता था। अब की बात ही कुछ और है। आज पार्टी हाईकमान किसी भी ज्ञात-अज्ञात व्यक्ति को कहीं से लाकर नेता के रूप में प्रतिष्ठित कर देता है और जनता को उसे स्वीकारने का ही विकल्प रहता है। कभी नेता को परिश्रमशील और रूखा जीवन बिताना पड़ता था, क्योंकि उसका एक मात्र लक्ष्य जन सेवा होता था। तब नेता और आम आदमी एक-दूसरे के करीब भी रहते थे। नेतागिरी के प्रति आकर्षण आज भी बरकरार है, उसके कारण जरूर भिन्न हो रहे हैं। बहुत से युवा जन नेता बनने को आतुर हैं। यह प्रवृत्ति किस कदर तेजी से बढ़ी है, इसका अनुमान निगम-पार्षद से लेकर संसद तक के चुनावों में भाग लेनेवाले प्रत्याशियों की बढ़ती संख्या से लगाया जा सकता है। नेतागिरी के प्रति आकर्षण का कारण उससे मिलनी वाली विभिन्न सिद्धियां हैं। लोग नेता की तलाश में रहते हैं, क्योंकि उनके मन में नेता की जो छवि है उसमें जनता की सेवा (सर्विस) और कल्याण (वेलफेयर) की प्रमुखता के भाव ही प्रमुख होते हैं। दुरूह होती व्यवस्था के मकड़जाल से मध्य और निम्न सामाजिक वर्ग के लोग त्रस्त हो रहे हैं। इसलिए आज कोई भी शख्स सड़क पर आसानी से मजमा जुटा सकता है और नेतागिरी कर सकता है।

नेता बनने का यह आकर्षण क्यों बढ़ा है, इसके कई कारण हैं। प्रमुख कारण है स्वच्छंदतापूर्वक आचरण की छूट और उसके साथ मिलने वाली सुरक्षा और अन्य सुविधाएं। कुल मिलाकर नेता बनना एक निहायत फायदे का सौदा है जिसमें लागत के मुकाबले कई गुना ज्यादा लाभ की गारंटी है। अधिकांश नेताओं की धन-संपदा का ग्राफ कितना बढ़ा और किस तरह बढ़ा, यह सबकी आखों के सामने है। आज धन बल और बाहुबल का ही जय घोष है। आज नेतृत्व में गहरी नैतिक त्रासदी छा रही है। इसकी पीड़ा सभी महसूस कर रहे हैं।

निजी तौर पर हर आदमी अकेले या सामूहिक तौर पर न्याय, ईमानदारी, भरोसा और प्रतिबद्धता जैसे मूल्यों को महत्व देता है, लेकिन मीडिया में नेताओं के अनैतिक आचरण की गाथाएं दिन-प्रतिदिन गूंजती रहती हैं। नफा या फायदा उठाना ही राजनीति का खास मकसद दिख रहा है। जनता नेताओं से जिम्मेदारी की अपेक्षा करती है। ध्यान रहे कि चरित्र, नैतिकता और आचार के प्रश्न से विरत होने पर राजनीति लोक क्षेम के गंतव्य से भी विरत होने लगती है। राजनीति कोई व्यापार नहीं है जिसका उद्देश्य अधिकाधिक लाभ कमाना होता हो। आर्थिक साम्राज्यवाद और स्वार्थ के इस दौर में आत्म तुष्टि ही व्यावहारिक नैतिक नियम बन चुका है। घूस, मिलावट और प्रदूषण के माहौल में नैतिक व्यक्ति ही नैतिक परिवेश का निर्माण में सहायक हो सकेगा। तभी आक्रोश, प्रतिशोध, अविश्वसनीयता, स्वार्थपरता, असंवेदनशीलता और अराजकता से मुक्ति मिल सकेगी। ऐसे कठिन काल में राजनीति को नए वर्ष के संकल्प के रूप में नैतिकता से दिशा लेनी की कोशिश करनी चाहिए। भारतीय समाज में नेता की भूमिका प्राचीन समय से ही महत्वपूर्ण रही है। देश का लोक मानस आज भी उसकी ओर आशा भरी दृष्टि से देखता है। नेतृत्व समाज के नैतिक संस्कार को प्रभावित करता है। नैतिक मूल्यों की उपेक्षा सिर्फ भौतिक नुकसान ही नहीं पहुंचाती। वह समाज के नैतिक परिवेश को भी कमजोर करती है।

(लेखक पूर्व कुलपति एवं शिक्षाविद् हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

आज में रखें आस्था

समय का आभास हम दिन, महीना, साल के रूप में करते हैं। सूर्य और चंद्रमा समय मापन के महत्वपूर्ण घटक हैं। इन्हीं पर हमारा दिन और रात आश्रित होता है। समय का प्रवाह अविरल, शाश्वत और सार्वकालिक है। अतः समय ही नियति है और सतत चलायमान रहना ही समय की प्रकृति है। बीता समय हमारा अतीत है, चल रहा समय हमारा वर्तमान है और आने वाला समय हमारा भविष्य है। समय बंद मुट्ठी में रेत की तरह फिसलता जाता है। इसलिए समय की हर घड़ी हमारे लिए महत्वपूर्ण है। समय के साथ परिवर्तन संसार का नियम है। समय कभी खराब नहीं होता। वह सभी के साथ न्याय करता है। समय को खराब बताने वाले अपने दूषित कर्मों से अनभिज्ञ रहते हैं। और अपना भी समय आएगा कहने वाले भविष्य की चिंता में वर्तमान के साथ छल करते हैं। समय न तो आता है और न ही आएगा। तारीखों के भरोसे तकदीर नहीं बदलती। कल हमेशा कल ही रहता है। अतः हमारी आस्था आज में होनी चाहिए। आज को जी भर के जीने वाले ही समय का पूर्णतः सदुपयोग कर पाते हैं। बीते कल को याद करने वालों के पास दुख और आने वाले कल को याद करने वालों के पास चिंता के सिवाय कुछ नहीं होता। भूत और भविष्य में जीने वाले ऐसे लोग वर्तमान के साथ अनुचित व्यवहार करते हैं।

नवीनता तारीखों के इशारों पर चलने वाले नववर्ष से अधिक स्वयं में नवीन परिवर्तन लाने में है। स्वयं का बदलाव ही सृष्टि को बदलने का माद्दा रखता है। ये बदलाव अपनी हानिकारक वृत्तियों को त्यागने एवं लाभकारी प्रवृत्तियों के प्रति उन्मुख होने के अटल संकल्प के साथ ही संभव है। समय के साथ हमें स्वयं को हर पल मांजना चाहिए। क्योंकि स्वयं को मांजने से ही हमारे चरित्र में उज्ज्वलता और निखार आता है। अतः परिवर्तन समय में नहीं, स्वयं में संभव है। स्वयं में परिवर्तन ही बुद्ध और महावीर बनने का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। और हमारी समस्त पीड़ाओं को हरकर हमें परम शांति दे सकता है।

देवेंद्रराज सुथार

जो बीत गया उसे बीत जाने दें

अंशुमाली रस्तोगी

जो बीत गया सो बीत गया, जो आने वाला है उसी के साथ हमें अपना तारतम्य बनाना है

बस एक दिन और फिर साल 2019 भी हमसे विदा ले लेगा। विदाई में कुछ अच्छी तो कुछ मीठी यादें साथ रहेंगी। साल भर में हमने क्या खोया, क्या पाया का आंकलन जारी रहेगा। लेकिन हममें से शायद ही कोई इस बात पर पुनर्विचार करेगा कि साल के शुरुआत में जो छोटे या बड़े संकल्प लिए थे, उनका क्या हुआ? अंत तक हम उन पर डटे रहे या बीच में ही छोड़ उनसे मुक्ति पा ली। अक्सर ही यह ध्यान में आया है कि जब नया साल शुरू होता है, तब हम किस्म-किस्म के संकल्प लेते हैं। संकल्पों की ये लौ हफ्ते-दो हफ्ते तक तो बढ़िया जलती है किंतु समय बीतते ही लौ धीमी पड़ने लग जाती है। और अंत तक हम ही उसे बुझा देते हैं। अपने लिए संकल्प हमें बोर और बोझ लगने लगते हैं। आज और कल की रस्साकशी में ही साल बीतता चला जाता है।

संकल्पों पर टिके न रहना बताता है कि हममें आत्मविश्वास और दृढ़ता की कमी है। यों भी, अपनी कही बात से मुकर जाना इंसान की सदियों पुरानी फितरत है। संकल्पों की इस यात्रा के बीच हम खुद को कितना बदल पाए हैं, इस पर भी हमें थोड़ा ठहरकर सोचने की जरूरत है। एक बात और, हम अपनी किसी भी अच्छी या बुरी बात का बोझ साल पर नहीं डाल सकते। हमेशा साथ रहने वाला और आगे आता हुआ साल हमें जीवन को जीने का फलसफा देता है। हमारा संघर्ष सही और गलत का साक्षी बनता है। साल कुछ नहीं करता, जो करता है वह इंसान ही करता है। दरअसल साल एक सूरज की मानिंद होता है। जिसका एकमात्र काम प्रकाश फैलाना होता है। यह निर्भर हम पर करता है कि हम उस प्रकाश को अपने जीवन में कितनी जगह देते हैं और कितना उससे दूरी बनाकर रखते हैं। समय की रेत पर हम निरंतर कुछ न कुछ लिखते-मिटाते रहते हैं। यह जरूरी भी है। ऐसा अगर नहीं करेंगे तो बहुत कुछ हमारे बीच से और बीच का ठहर जाएगा। बस ठहरने ही तो नहीं देना है कुछ भी। विकास, सोच, विचार, अहसास की प्रक्रिया चलती रहनी चाहिए। साल हमें यही मौके हर बार देता है कि हम कुछ अच्छा बुनें, कुछ अच्छा करें, कुछ अच्छा बनाएं, कुछ अविस्मरणीय यादें संजोएं रहें। नकारात्मकता को न केवल खुद से, बल्कि अपने जीवन से भी दूर, बहुत दूर रखें।

अच्छा लगेगा अगर साल 2020 में हम धर्म और जाति की जड़ताओं और भेदभाव से मुक्ति पाएं। अगर साल 2020 में हम राजनीतिक बहसों में सोशल या निजी प्लेटफॉर्म पर अपनी दोस्तियां न तोड़ें, उन्हें बरकरार रखें। मतभेद को मनभेद न बनाएं। अगर साल 2020 में हम कुछ देर के लिए मोबाइल का साथ छोड़, घर के किसी बुजुर्ग या बच्चे का हाथ पकड़ें, उनका स्नेह लें, अपना स्नेह उन्हें दें। अगर साल 2020 में हम स्त्री को इज्जत दें, उन्हें प्रताड़ित न करें। अगर साल 2020 में किसी अनजान व्यक्ति के साथ चाय-कॉफी पिएं, कुछ उससे अपनी कहें, कुछ उसकी सुनें। अगर साल 2020 में हम अपनों को हाथ से कभी-कभार पत्र लिखें।

हालांकि ये बहुत छोटी व्यवहार-गत बातें हैं, जिन्हें किन्हीं संकल्पों में बांधने की आवश्यकता नहीं। इन्हें तो बैठे-ठाले भी किया जा सकता है। यह तो जीवन का संगीत है, जिसे सुनने के लिए ईयर-बड नहीं चाहिए होते।

(लेखक स्वतंत्र टिप्पणीकार हैं)

मेलबाक्स

एकपक्षीय विचार

संवैधानिक मूल्यों को बचाने का समय शीर्षक से लिखे अपने लेख में पी चिदंबरम ने मोदी सरकार के दूसरे कार्यकाल में उठाए गए तमाम महत्वपूर्ण कदमों जैसे-तत्काल तीन तलाक कानून, नागरिकता संशोधन कानून, प्रस्तावित एनआरसी, एनपीआर एवं अनुच्छेद 370 की समाप्ति की आलोचना की है। उन्होंने बताया है कि इन मुद्दों का आम आदमी से कोई खास सरोकार नहीं है। उल्लेखनीय है कि तत्काल तीन तलाक कानून ने देश की करीब दस करोड़ महिलाओं को सीधे तौर पर प्रभावित किया है। जाहिर है कि इस मुद्दे का सरोकार सीधे-सीधे आम आदमी से जुड़ा हुआ है। नागरिकता संशोधन कानून का आधार भी शुद्ध रूप से मानवीय है, न कि धार्मिक। इस कानून में अधिसूचित धर्म समूहों से जुड़े लोग संबंधित देशों में अपनी आस्था और विश्वासों के कारण लंबे समय से प्रताड़ित होते रहे हैं। इन लोगों को यदि उदारतापूर्वक देश की नागरिकता देने का प्रस्ताव किया गया है तो यह अंतरराष्ट्रीय मानवाधिकार के प्रति भारत की प्रतिबद्धताओं के अनुकूल ही है। रही बात श्रीलंका के तमिलों को नागरिकता कानून में शामिल न करने की तो सच्चाई यह है कि श्रीलंका के तमिलों की समस्या का स्वरूप राजनीतिक है, न कि धार्मिक। वहां उन्हें अपनी आस्था एवं विश्वास के कारण प्रताड़ित किया जाता हो, इसका कोई सुबूत नहीं है। यही बात भूटान के ईसाइयों के मामले में भी कही जा सकती है। लेखक ने केंद्र सरकार द्वारा एनपीआर के लिए डाटा संग्रह की कवायद की भी आलोचना की है। क्या वह यह कहना चाह रहे हैं कि कांग्रेस की सरकार के समय यह काम संविधान की भावना के अनुरूप था, लेकिन यदि उसी काम को भाजपा सरकार ने आगे बढ़ाया है तो वह संवैधानिक मूल्यों के खिलाफ है। ध्यातव्य है कि किसी भी देश की सरकार को इसका पूरा अधिकार है कि वह अपने क्षेत्र में रहने वाले लोगों की पूरी जानकारी रखे। यह उस देश की सुरक्षा और उसकी सरकार की विकास योजनाओं और कल्याणकारी नीतियों के लिए आवश्यक डाटा प्रदान करती है। वैसे भी एनपीआर किसी तरह से नागरिकता को परिभाषित नहीं करता। लगता है कि लेखक ने एक दल के राजनीतिक नेता के तौर पर उक्त लेख को लिखा है। इसलिए उनका दृष्टिकोण एकपक्षीय हो गया है।

chandankarn9470@gmail.com

एक गलत परिपाटी

पश्चिम बंगाल के राज्यपाल जगदीप धनखड़ के साथ सार्वजनिक दुर्व्यवहार के बाद केरल के राज्यपाल आरिफ मुहम्मद खान के साथ भी दुर्व्यवहार न केवल शर्मनाक है अपितु संवैधानिक पदों पर आसीन व्यक्तियों के अपमान की नई अवांछित परिपाटी शुरू हो रही है। सत्तासीन पार्टी निश्चित रूप से अपनी पार्टी के लोगों को राज्यपाल और राष्ट्रपति पद पर आसीन करती रही है और इसे यह केवल भाजपा ने शुरू नहीं किया है, कांग्रेस ने भी ऐसा खूब किया है, तो इसका तात्पर्य यह नहीं कि विपक्षी दलों और भिन्न विचारधारा के लोग उनका अपमान करें। कल को तो राष्ट्रपति के अभिभाषण पर भी दुर्व्यवहार हो सकता है क्योंकि वे सरकार के हर अच्छे तथा अलोकप्रिय फैसलों की प्रशंसा करते हैं। ये कैसा चलन प्रारंभ किया जा रहा है? विपरीत विचारधारा के बावजूद कम से कम संवैधानिक पदों का सम्मान तो होना ही चाहिए अन्यथा संविधान के सम्मान पर प्रश्नचिह्न लगना निश्चित है।

सतप्रकाश सनोठिया, रोहिणी

न फैलाएं भ्रम

पी चिदंबरम के 'संवैधानिक मूल्यों को बचाने का समय' में कांग्रेस पार्टी के नेतृत्व में बहुत ही अंतर्विरोध नजर आता है। ये दिग्भ्रमित नेता अपने समर्थकों को भी भ्रमित कर देश अहित में ही कार्य कर रहे हैं। मोदी सरकार की प्रचंड बहुमत से वापसी को ये समझ नहीं पा रहे हैं। यदि मोदी सरकार के पहले कार्यकाल में अच्छे काम नहीं हुए तो दोबारा उनको प्रचंड बहुमत नहीं मिलना चाहिए था। मुख्य विरोधी पार्टी अभी भी तीन तलाक, 370, नागरिकता कानून आदि प्रत्येक बात को गलत बता रही है। अपने वोट बैंक को बनाए रखने के लिए ये किसी भी हद तक जाने को प्रयासरत दिखाई देते हैं। एनपीआर को भी ये शंका की नजर से देखने का प्रयास कर अपने समर्थकों को भी भ्रमित कर रहे हैं। भविष्य में इतिहास के पन्नों पर इन नेताओं के नाम किस तौर पर दर्ज किया जाए इस बात को तो ये लोग खुद ही तय कर रहे हैं।

bailwalbp@gmail.com

इस स्तंभ में किसी भी विषय पर राय व्यक्त करने अथवा दैनिक जागरण के राष्ट्रीय संस्करण पर प्रतिक्रिया व्यक्त करने के लिए पाठकगण सादर आमंत्रित हैं। आप हमें पत्र भेजने के साथ ई-मेल भी कर सकते हैं।

अपने पत्र इस पते पर भेजें :
दैनिक जागरण, राष्ट्रीय संस्करण,
डी-210-211, सेक्टर-63, नोएडा
ई-मेल : mailbox@jagran.com

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, जागरण प्रकाशन लि. के लिए: नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा 501, आई.एन.एस. ब